अणुव्रत अमृत महोत्सव

अणुव्रत गीत महासंगान

संयम ही जीवन है

18 जनवरी 2024

अणुव्रत आंदोलन के गौरवशाली 75 वर्ष

चेतना शुद्धि और स्वस्थ समाज निर्माण का संकल्प

अणुविभा

अणुव्रत विश्व भारती सोसायटी

संयम के घोष को करें आत्मसात

अणुव्रत अनुशास्ता
आचार्य महाश्रमण

अणुव्रत गीत की धुन के लिए
इस क्यूआर कोड को स्कैन करें -

संयम के घोष को करें आत्मसात

जीवन का आदि बिंदु है जन्म और उसका अंतिम बिंदु है मृत्यु। जन्म धारण करने वाला संसार का हर प्राणी जीता है, फिर भले वह मनुष्य हो, पशु-पक्षी हों अथवा पेड़-पौधे आदि हों। जीना कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है कलात्मक जीवन जीना। कलात्मक जीवन किसे कहा जाये, इस संदर्भ में अनेक परिभाषाएं दी जा सकती हैं। जो जीवन धर्म और कौशल से अनुप्राणित होता है, वही कलात्मक होता है।

जीने की कला का प्रमुख सूत्र है- प्रसन्न, प्रशांत और समाधि में रहना। जो व्यक्ति हर स्थिति में प्रसन्न और शांत रहना सीख लेता है, वह जीने की कला में कुशल बन सकता है। जीने की कला को सीखने का अर्थ है जीवन की सभी क्रियाओं को सम्यक् बनाना, अपने दृष्टिकोण को सम्यक् बनाना। इस कला को सीखने के लिए सबसे खास बात यह है कि मनुष्य आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण और आत्मसमीक्षा करना सीखे।

सामान्यतः आदमी की वृत्ति होती है कि वह स्वयं के नहीं, दूसरों के दोष अधिक देखता है। परदोषदर्शन में आदमी अधिक रस लेता है क्योंकि उसे दूसरा व्यक्ति ही दिखायी देता है। कभी आदमी को स्वयं की दुर्बलता का एहसास हो भी जाये तो वह जैसे-तैसे उसे ढकने का ही प्रयास करता है। चिंतन का यह कोण इस रूप में परिवर्तित हो जाये कि मुझे अपना परिमार्जन और परिष्कार करना है। मैं अपनी छोटी-बड़ी हर स्खलना के प्रति सजग रहूं। मुझे कोई दूसरा देखे या न देखे, मैं स्वयं अपने आचरण के प्रति जागरूक रहूं। भूल से प्रमाद हो जाये तो उसे दोहराने का प्रयत्न न करूं- यह आत्मदर्शन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। आत्मदर्शन की इस प्रक्रिया को अपनाने वाले व्यक्ति की जीवन पोथी का हर पृष्ठ उजला बन सकता है।

वस्तुतः अपने दोषों को देखना, अपनी कमजोरियों को पहचानना बहुत बड़ी बात है। जब तक बुराई का एहसास नहीं होता, वह छूट नहीं सकती। व्यक्ति तटस्थ और निष्कपट भाव से आत्मप्रेक्षा करे कि मेरे भीतर क्या-क्या बुराइयां हैं? मुझमें अहंकार कितना है? अनावश्यक बोलने की आदत कितनी है? प्रमाद कितना करता हूँ? जब इन भूलों से परिचय हो जाये तो व्यक्ति उन्हें छोड़ने के लिए संकल्पित बने। सब बुराइयों को एक साथ नहीं छोड़ सके तो उसके लिए क्रमिक अभ्यास करे।

जिस व्यक्ति की चेतना आत्मदर्शन की ओर अग्रसर हो जाती है, उसके परदोषदर्शन के संस्कार स्वतः छूट जाते हैं। वह विधायक भाव में रमण करने लगता है और अपने जीवन को सही दिशा की ओर मोड़ता हुआ औरों के लिए भी आदर्श बन जाता है।

व्यक्ति अपनी दृष्टि को सम्यक् बनाये, चिंतन को प्रशस्त बनाये और मनुष्य जीवन की महत्ता को समझे, यह अपेक्षित है। हम विचार करें कि हमारी दृष्टि कहां टिकी है- गुणों पर या बुराइयों पर। सद्गुण ग्राह्य हैं और दुर्गुण त्याज्य। क्रोध करना, अपशब्द का प्रयोग करना, असत्य बोलना, धोखा देना, चोरी करना, असंयम करना - ये दुर्गुण हैं। विनम्र रहना, किसी को कष्ट न देना, असत्य न बोलना, उत्तेजित न होना, सरल होना - ये सद्गुण हैं। सद्गुण संजोकर व्यक्ति महान बन सकता है और दुर्गुण संजोकर व्यक्ति अधम बन सकता है। अपेक्षा है महान बनने के बीजों पर दृष्टि रखते हुए उन्हें पल्लवित, पुष्पित और फलित

चेतना शुद्धि और स्वस्थ समाज निर्माण का संकल्प

करने की दिशा में गति हो और पतन की ओर ले जाने वाले बीजों को नष्ट करने का प्रयत्न हो। जीवन की सफलता का यह बीजमंत्र है।

वस्तुतः जीवन को मंजिल की ओर गतिमान करने के लिए ज्ञान का प्रकाश और आचरण की सौरभ चाहिए। ज्ञान के आलोक में व्यक्ति अपना आत्मनिरीक्षण करता रहे और सदाचरण के सौरभ से जीवन को महकाता रहे। जो व्यक्ति उदारचेता होता है, ईमानदार होता है, नशामुक्त जीवन जीने वाला होता है, विनम्र होता है, मृदु होता है, शांत स्वभावी होता है, बड़ों का आदर करना जानता है, औरों के कल्याण की भावना रखता है, सरल होता है, उसका जीवन सद्गुण के सौरभ से भरा होता है। अपनी प्रज्ञा के प्रकाश में व्यक्ति स्वयं झांके और देखे, उसने जीवन में इन सद्गुणों का सौरभ है या नहीं। यदि है तो निश्चित ही उसकी गति प्रशस्त है।

कैसे खाएं? कैसे बोलें? कैसे सोएं? आदि प्रश्नों की तरह कैसे सहें? यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सहना सुखी जीवन की एक अनिवार्य अपेक्षा है। वास्तव में जो सहना जानता है वही जीना जानता है। जिसे सहना नहीं आता वह न तो शांति से स्वयं जी सकता और न अपने परिपार्श्व के वातावरण को शांतिमय रहने देता है। जहां समूह है वहां अनेक व्यक्तियों को साथ जीना होता है। जहां दूसरे के विचारों को सुनने, समझने, सहने और आत्मसात करने की क्षमता नहीं होती, वहां अनेक उलझनें खड़ी हो जाती हैं। जितने भी कलह उत्पन्न होते हैं, चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक, उनके मूल में एक कारण असहिष्णुता है।

आदमी लंबा श्वास ले, लंबा श्वास छोड़े और साथ में सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा करे तो यह प्रयोग क्रोध-शमन के साथ स्वस्थता एवं मानसिक एकाग्रता की दृष्टि से बहुत उपयोगी बन सकता है। इस प्रकार शरीर, मन और वचन इन तीनों योगों को साथ लिया जाये तो सहिष्णुता का गुण स्वतः विकसित हो जाएगा। सहिष्णुता का विकास आदमी की चेतना में शांति और आनंद का अवतरण करने वाला सिद्ध होगा।

मनुष्य एक क्रियाशील प्राणी है। प्रतिक्षण वह किसी न किसी क्रिया में संलग्न रहता है। प्रयोग और परीक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष सामने आया कि मनुष्य सबसे अधिक सोचने की क्रिया करता है। सोचना एक ऐसी क्रिया है जो हर क्रिया के साथ संपृक्त रह सकती है। व्यक्ति चलते समय सोचता है। खाते समय विचारों के उपवन में घूमता है। यहां तक कि व्यक्ति नींद में भी चिंतन मुक्त नहीं रहता। विचार सबसे अधिक गतिशील होता है। मन का कार्य है- स्मृति, चिंतन और कल्पना। मन एक क्षण में कहीं का कहीं पहुँच जाता है। सोचने का, चिंतन का सिलसिला निरंतर चलता रहता है। सामान्य आदमी का मन किसी एक आलंबन पर स्थिर नहीं रहता। वह चंचल है, व्यग्र है, विचरणशील है इसलिए सामान्यतया वह पकड़ में नहीं आता।

बहुधा देखा जाता है कि आदमी मन की बैसाखी के सहारे ही चलता है और वह आलंबन कभी-कभी उसके लिए खतरे की घंटी भी बन जाता है। मन की चंचलता से मनुष्य व्यथित है।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।
मन के मते न चालिए, पलक-पलक मन ओर।।

इस पद्य में मन को निकृष्ट और हेय बताया गया है। चिंतन का यह एक पक्ष है। दूसरी दृष्टि से विचार करें तो मन अच्छा भी है। मन से ही भगवान का स्मरण किया जाता है। मन के द्वारा ही किसी के हिताहित का

चिंतन किया जाता है। मन के माध्यम से समस्याओं का समाधान भी पाया जा सकता है। मन हमारा नौकर है पर कभी-कभी नौकर भी मालिक को परेशान कर देता है। अपेक्षा है मन को संस्कारी बनाया जाये, संयत बनाया जाये और उसे अच्छी सोच में नियोजित किया जाये। प्रश्न होगा- सोच को सम्यक् कैसे बनाया जाये? अध्यात्मविदों ने सोच की प्रक्रिया की प्रस्तुति दी। उनके अनुसार व्यक्ति मित, हित और ऋत (यथार्थ) चिंतन करे। इस त्रिपदी के प्रयोग से वह वैयक्तिक, पारिवारिक और सामूहिक दृष्टि से विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर सकता है।

जीने की कला की भाँति मरने की भी कला होती है। मृत्यु की कला को वही व्यक्ति जान सकता है जो जीवन की कला से अभिज्ञ होता है। भगवान महावीर कला मर्मज्ञ थे। उन्होंने जैसे जीवन की कला का दर्शन दिया, वैसे ही मृत्यु की कला को भी विश्लेषित किया। महावीर के दर्शन में जीने और मरने का महत्व नहीं है। महत्व संयम और समाधि का है। असंयममय जीवन भी काम्य नहीं है, मृत्यु भी काम्य नहीं है।

प्रकृति मनुष्य की चाह के अनुसार नहीं, अपने नियम से चलती है। वह कब, किसे, कहाँ से उठाती है, प्रायः खबर तक नहीं लगने देती। वह न बालक पर अनुकंपा करती है, न जवान पर। मृत्यु के आगे व्यक्ति के सारे प्रयास विफल हो जाते हैं। उसे मृत्यु की गोद में सोना ही पड़ता है। मृत्यु चूंकि एक अनिश्चितकालीन घटना है।

भगवान महावीर ने एक सूत्र दिया- समयं गोयम! मा पमायए। गौतम! तुम क्षण भर भी प्रमाद मत करो। गौतम को प्रतीक बनाकर महावीर ने प्राणी मात्र को जागरुकता का संदेश दिया। उन्होंने कहा- यह जीवन पके हुए वृक्ष की भाँति कभी भी झड़ सकता है। ओस बिंदु की भाँति हवा के हल्के से झोंके से कभी भी मिट्टी में मिल सकता है, इसलिए इस जीवन को सफल बनाने के लिए हर क्षण जागरूक रहो।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो लगता है कि मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में जितना जागरूक है, अध्यात्म के प्रति उतना ही अधिक लापरवाह है। पदार्थों की प्रचुरता में सुख और पदार्थों की अल्पता में दुःख की कल्पना करता है। इस कल्पना के आधार पर वह येन केन प्रकारेण अधिक से अधिक धन संग्रह करने में प्रयत्नशील रहता है। उसका यह प्रयत्न तब तक चालू रहता है जब तक उसके शरीर की शक्ति चुक न जाये। धार्मिक आचरण करने व अपने आपको जानने समझने के लिए उसके पास समय नहीं होता है अथवा बहुत कम होता है।

असंयम के दुष्परिणामों से आज कोई भी समाज, राष्ट्र अपरिचित नहीं है। समस्याओं के मूल में असंयम ही है। ज्यों-ज्यों आकांक्षाओं का विस्तार हुआ है, त्यों-त्यों मानवीय मूल्यों का पतन हुआ है, अध्यात्म का ह्रास हुआ है और मानव मन की शांति भंग हुई है। आज बहुत कुछ प्राप्त करके भी मनुष्य बेचैन है।

एक समय था जब सीमित पदार्थों का भोग करता हुआ भी व्यक्ति सुखी था और आज पदार्थों की भीड़ के बीच जीता हुआ भी व्यक्ति अशांत है। क्यों? उत्तर स्पष्ट है- संयम में सीमा है। असंयम में कोई सीमा नहीं है। आज मनुष्य वैभव की अंधी दौड़ में प्रतियोगी बना हुआ है। अपेक्षित है संयम ही जीवन है – अणुव्रत के इस घोष को आत्मसात करने की। यदि मनुष्य सुख की सांस लेना चाहता है तो उसे संयम की शरण स्वीकार करनी होगी। इसके बिना उसका कोई शरण, त्राण और द्वीप नहीं है। मन, वचन व काया - इन तीनों की प्रवृत्ति को जो संयत रखना जानता है, सद्गति स्वयं उसका वरण कर लेती है।